पशुओ की देखभाल

डा० ए० के० उपाध्याय

पशु जन स्वास्थ्य एवं जानपादिक विभाग़ पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय
गोविंद बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
पंतनगर. **263145**

सफल पशुपालन एवं अधिक उत्पादन हेतु पशुओ का स्वस्थ रहना एवं उनकी कम मृत्युदर अत्यधिक आवश्यक है। पशुओ की देखभाल को मुख्यतः तीन भाग मे बाट सकते है।

अ–शिशुओं की देखभाल

शिशु पशुओं में 6 महीने की उम्र तक मृत्यु अधिक होती है क्योंकि इस उम्र तक उसमें रोग प्रतिरोधक क्षमता पूर्णतया विकसित नहीं होती है। अतः अनेक प्रकार के रोग होने की संभावना बनी रहती है। यही कारण है कि शिशु पशु को रोग से बचाने के उपाय करने चाहिए। प्रायः शिशुओं में रोग आसपास की गन्दगी, गन्दा पानी चाटना, छोटी जगह में अनेक शिशु रखना तथा शिशु को उनकी माता का दूध पर्याप्त मात्रा में न पिलाने के कारण होते हैं। शिशु पशुओं के प्रमुख रोग निम्नवत् हैः

1. न्यूमोनिया : जब ठण्ड के दिनों में अधिक मात्रा में शिशु छोटे स्थान पर रखे गये हो तो उनमें न्यूमोनिया जैसे रोग की सम्भावना बढ़ जाती है। यह मुख्यतया जीवाणु, विषाणु व परजीवी से होती है इससे बछड़ों में मृत्युदर 50 प्रतिशत तक होती है। इस रोग में जानवर के शरीर का ताप बढ़ जाता है। श्वांस गति बढ़ जाती है। बार–बार खाँसी आती है। श्वांस लेने में परेशानी होती है। नासाछिद्रों से पानी बहने लगता है। आला (स्टेथोस्कोप) लगाने से फेफड़ों से पानी भरने की ध्वनि सुनाई देती है जिससे इस बीमारी का निदान किया जा सकता है। उपचार हेतु पशु चिकित्सक की देखरेख में प्रतिजैविक औषधि शरीर के ताप को कम देती है और रोग को ठीक कर देती है।

2. परजीवी रोग : छोटे शिशुओं की मिट्टी या गन्दी चीज खाने की आदत होती है जिससे उनमें यह रोग अधिक होता है। भैंस के शिशु में यह परजीवी गर्भ के समय ही भैंस के द्वारा शिशु में आ जाते हैं। यह रोग छोटे शिशुओं में मृत्यु कर सकता है। यह परजीवी आँतों में आमाशय की भित्ति से चिपक कर भोजन शोषित करते हैं जिसमें जानवर कमजोर हो जाता है। खून की कमी हो जाती है। कभी–कभी ये परजीवी जिगर मे पित्त नली में घुसकर रूकावट पैदा करते हैं। बीमार जानवर के गोबर को सूक्ष्मदर्शी से देखने पर परजीवी के अंडे दिखते है जो रोग का निदान करने में सहायक सिद्ध होते है। अण्डे पाये जाने पर एलबेन्डाजोल नामक औषधि देनी चाहिए।

3. दस्त : यह बछड़ों की एक प्रमुख बीमारी है तथा इसका प्रभाव एक माह से कम उम्र के बछड़ों में ज्यादा होता है। इससे 10–80 प्रतिशत तक मृत्युदर हो सकती है जो बछड़े बच जाते हैं उनमें वृद्धि की दर कम हो जाती है और वे कमजोर रह जाते है। इस बीमारी में बछड़ों को पतले सफेद व दुर्गन्धयुक्त दस्त लग जाते हैं। जानवर कमजोर होने लगता है तथा उसे भूख कम लगती है। मुख्यतया विषाणु एवं जीवाणु से यह बीमारी होती है जो कि आँतों में क्षति पहुँचाता है। इस रोग में चिकित्सक के परामर्श के अनुसार सल्फा औषधि उपयोगी होती है।

4. डिथीरिया : यह रोग मुख्यतया छः सप्ताह से कम उम्र के बछड़ों में एक जीवाणु के कारण होता है। इसमें मुँह तथा गले में मटमैले रंग के धब्बे लग जाते हैं। जीभ सूज जाती है। मुँह से पानी गिरने लगता है जिससे जानवरों को खाने–पीने में कठिनाई होती है। इसके अलावा साँस लेने में भी कठिनाई होने लगती है। भूख मर जाती है। जानवर सुस्त हो जाता है। इस रोग का निदान मुँह में मटमैले रंग के धब्बे देखकर तथा जीभ की सूजन देखकर किया जा सकता है। उपचार हेतु ज्वर कम करने की दवा के साथ प्रतिजैविक औषधि जैसे एम्पीसीलीन आदि देना होता है।

5. जोड़ों की सूजन : इस रोग में जानवर के जोड़ तथा नाभि सूज जाती है। मुख्यतया घुटने का जोड़ प्रभावित होता है इससे जानवर को चलने में कठिनाई होती है और उठने में दर्द महसूस होता है जिससे जानवर धीरे– धीरे कमजोर होने लगता है। यह रोग न्यूमोनिया या ऐनसैफेलोमाइलाइटिस का कारण भी हो सकता है। प्रभावित पशु में शीघ्र ही जैन्टामाइसिन का टीका उचित मात्रा में लगाना चाहिए।

6. थिलेरियोसिस : यह रोग एक प्रकार के एक कोशीय परजीवी से होता है। ये परजीवी एक जानवर से दूसरे जानवर में किलनियों द्वारा फैलते हैं। ये परजीवी जानवरों की लसिका ग्रन्थियों में सूजन पैदा करते हैं। तापमान बढ़ जाता है साँस लेने में कठिनाई पैदा होती है। जानवर कमजोर हो जाता है और मर जाता है। उपचार हेतु टेरामाइसिन की उचित मात्रा सात दिन तक लगानी चाहिए एवं बचाव हेतु रक्षा वो–वैक का टीका 3–6 माह की उम्र पर लगाना चाहिए।

7. एनसैफेलोमाइलाइटिस : यह रोग क्लेमाइडिया या कुछ अन्य जीवाणुओं जैसे हीमोफिल्स, ई0 कोलाई आदि से होता है। इससे शरीर का तापक्रम 105–107^0 फारेनहाइट तक बढ़ जाता है व भूख कम लगती है। इस बीमारी से बछड़ों में 30 प्रतिशत तक मृत्युदर हो सकती है जो बछड़े बच जाते हैं, उनमें वृद्धि दर कम हो जाती है। पशु चिकित्सक की सलाह से उचित मात्रा में प्रति जैविक औषधि लगानी चाहिए।

ब–वयस्क पशुओ की देखभाल

एक वर्ष से जादा आयु के पशु को वयस्क समझना चाहिये। प्रत्येक एक वर्ष ये जादा उम्र के पशु को लगभग 3 वर्ग मीटर का क्षेत्र रहने हेतू चाहिये। अतः 10 पशु हेतू 30 वर्ग मीटर का क्षेत्र चाहिये। प्रत्येक पशु को उसके शरीर भार के दसवें भाग के वनज के बराबर चारा चाहिये। अर्थात 300 किलो के पशु हेतु 30 किलो चारा चाहिये। इस चारे का 70 प्रतिशत भाग हरा तथा 30 प्रतिशत भाग सूखा चारा होना चाहिये। प्रत्येक पशु को दोनो समय ताजा चारा ही खिलाना चाहिये। प्रत्येक पशु को 1 किलो रासन खिलाना चाहिये, परन्तु यदि पशु दूध दे रहा है तो प्रत्येक 3 लीटर दूध पर 1 किलो अतिरिक्त रासन खिलाना चाहिये। पशु के रासन मे 2 प्रतिशत खनिज मिश्रण तथा 1 प्रतिशत नमक होना चाहिये।

विभिन्न रोगो से बचाव हेतू अप्रैल–मई माह मे खुर पका–मुह पका व गलाधोटू संयुक्त रोग रोधक टीका तथा अक्टूबर माह मे केवल खुर पका–मुह पका रोग रोधक टीका लगाना चाहिये। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पशु को फरवरी एवं सितम्बर माह मे पेट के कीडों के नाशन हेतु अंतः परजीवी नाशक दवा भी देनी चाहिये। गाभिन पशु मे पहले 3 माह तथा आखिरी 3 माह के गर्भ काल मे अंतः परजीवी नाशक दवा नही खिलानी चाहिये। परन्तु बीच के 3 माह मे अंतः परजीवी नाशक दवा अवस्य खिलानी चाहिये, इससे नवजात पशु के पेट मे कीडे नही होते है और उनके जीवित रहने की सम्भावना अधिक हो जाती है।

स–गाभिन पशुओ की देखभाल

यदि पशु उपयुक्त समय पर बच्चा न उत्पन्न करे तो पशु पालन का उद्धेश्य पूर्ण नहीं होता है। वयस्क संकर बछिया 18 माह में, देशी 24 माह में एवं भैस ओसर को 30 माह में गाभिन हो जाना चाहिए। इसी प्रकार प्रत्येक पशु में गाभिन होने की अवस्था है। इसी प्रकार ब्याने के बाद एक निश्चित अवधि में पशु को पुनः गाभिन हो जाना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हो रहा है तो पशु को कोई रोग है। ऐसे अन्य कई जनन तन्त्र के रोग है जिनका संक्षेप में उल्लेख हितकर होगा।

1. मद में न आना : जब पशु उचित समय पर गर्मी में न आये तो इसे मद में न आना या एनइस्ट्रस कहते है। इसके कई कारण हो सकते है किन्तु प्रमुख कारण है पोषण की कमी, इसके अतिरिक्त इस्ट्रोजन नामक हार्मोन का न बनना, अंतः कृमियों का प्रकोप, आदि। रोग का निदान या पहचान तो सहज है और उपचार हेतु सर्वप्रथम पशु को अंतःकृमि नाशक दवा जैसे एलबेण्डाजोल या लिबेमिशाल की उचित मात्रा देकर, 50 ग्राम प्रति दिन की दर से खनिज मिश्रण देना चाहिए। पशु में हार्मोन बनने की प्रक्रिया को ठीक करने हेतु अंकुरित अनाज जैसे जौ, चना एवं गेहूँ आदि भी आधा पाव (125 ग्राम) रोज की दर से खिलाना चाहिए। इस प्रकार गर्मी में लाने में 20–40 दिन उपचार करना पड़ता है। प्रथम मदकाल को छोड़कर अगले मदकाल में मद के लक्षण जब कम होने लगे तो पशु को गाभिन कराना चाहिए।

मद के लक्षण

1. पशु बार–बार पेशाब करता है।
2. पेशाब के रास्ते पारदर्शी मल गिराता है।
3. आसपास के अन्य पशु पर चढ़ता है।
4. चारा कम खाता है।
5. शरीर का तापमान लगभग 1 डिग्री सेन्टीग्रेड बढ़ जाता है।
6. रम्भाता या बोलता है।
7. बेचैन रहता है।
8. योनि में हल्की सूजन आ जाती है।
9. योनि के आसपास हाथ रखने पर पशु आराम महसूस करता है।
10. दुधारू पशु में दुग्ध उत्पादन घट जाता है।

2. गाभिन न होना : कई बार पशु गर्मी में तो आता है किन्तु गाभिन कराने पर भी रूकता नहीं है। ऐसा अनेक कारणों से होता है। जैसेः पोषण की कमी, हारमोन की कमी, संक्रमण जैसे ब्रूसेल्ला इत्यादि, बच्चेदानी में मवाद, ओवरी पर कार्पस ल्यूटियम नामक उभार, अण्डा उपलब्ध न होना, सही समय पर सही वीर्य से गाभिन न करा सकना एवं वीर्य का संक्रमण इत्यादि। प्रायः रोग की सही पहचान कठिन होती है और एक योग्य पशु चिकित्सक ही ठीक–ठीक कारण की पहचान कर उचित चिकित्सा द्वारा पशु को उपचारित कर सकता है। परन्तु पशुपालक संतुलित आहार जो खनिज मिश्रण युक्त हो तथा पशु की स्वच्छता का ध्यान रखकर, अनेक कारणों को हटा सकता है जिससे पशु समय पर गाभिन हो सके और उत्पादकता बनी रहे। पशु को गाभिन यदि साड़ द्वारा कराया जा रहा है तो यह ध्यान रखना आवश्यक है साड़ की उम्र व स्वास्थ्य अच्छा हो। साड़ द्वारा एक दिन में 2 से ज्यादा पशु गाभिन न किये जा रहे हो। गाभिन करते समय शान्ति हो और पशु को गाभिन करने के पूर्व व बाद आधा घण्टे का आराम दिया गया हो। कृत्रिम गर्भादान में वीर्य अच्छा हो वह ठीक प्रकार से भण्डारित हो। उसे ठीक प्रकार सामान्य तापमान पर लाया गया हो तथा वीर्य जनन मार्ग में सर्विक्स भाग के मध्य में डाला गया हो। इस प्रकार प्रबन्धन द्वारा अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकेगे।

3. गर्भाशय का संक्रमण : गर्भाशय में संक्रमण जनन तंत्र का प्रमुख रोग है। इसके लिए गर्भाशय का गुदा द्वारा परीक्षण करें तथा उसमें पाये जाने वाले मवाद की जाँच करें। यदि मवाद है तो गर्भाशय की 3–5 दिन तक ल्यूगाल्स आयोडीन या पोटेशियम परमैगनेट के घोल से सफाई करना चाहिए तथा गर्भाशय में व इन्जेक्सन दोनों द्वारा प्रतिजैविक व सहायक औषधि देना चाहिए।

4. नाल या जेर रूकना : सामान्यतः जेर प्रसव के 6–8 घंटे उपरान्त गिर जाती है। प्रसव के उपरान्त आसानी से जेर गिर जाये इसके लिए मैगसल्फ–250 ग्राम, एक्सस अरगर तरल 10 मिली0, टिंचर जिंजीबेरिस 60 मिली0 तथा पानी 500 मिली0 मिलाकर पशु को पिलाना चाहिए। बाजार में उपलब्ध यूटेरोटोन, हार्मोटोन, रिप्लेन्टा का घोल या एक्जापार को 100 से 200 मिली0 प्रतिदिन 2 से 5 दिन के लिए पिलाने से भी लाभ मिलता है। यदि उपरोक्त उपचार के पश्चात ब्याने के तीस घण्टे तक भी नाल न गिरे तो उसे हाथ से निकाल दें। इसके लिए हाथों पर टेगेरॉन क्रीम या सैवलॉन लगायें तथा जितना सम्भव हो पूर्णतः नाल को हल्के हाथ से बाहर निकाल दें। नाल निकालने के उपरान्त फ्यूरिया या फ्यूजोन या न्यूफ्रोजोन की दो गोली प्रतिदिन गर्भाशय में डालना चाहिए। ये कुछ अन्तः गर्भाशय दवायें हैं जिनमें नाइट्रोफ्यूराजोन तथा यूरिया हैं जो आर्गेनिक पदार्थो के गलाने तथा उसे शरीर से बाहर गिराने में सहायक है। यह उपचार संक्रमण निरोध के लिए भी महत्वपूर्ण है। क्योंकि यदि जेर या नाल 40 घंटे तक न गिरे तो पशु में बुखार, गर्भाशय में दर्द तथा विषाक्ता जैसे लक्षण दिखने लगता है। गर्भाशय में यदि संक्रमण हो गया हो तो ऑक्सीटेट्रासाइक्लिन अन्तः गर्भाशय तथा इन्जैक्सन दोनों से देना चाहिए। 30 मिली0 टेरामाइसिन तरल या मेट्रोजिल भी गर्भाशय में डालने हेतु उपयोग कर सकते है।

5. योनि तथा गर्भाशय का बाहर निकलना : सामान्यतः योनि का निकलना रूकी हुई नाल, शरीर में पोषण की कमी, तीक्ष्ण संताप तथा संक्रामक गर्भपात जैसे रोगों के कारण होती है। कभी–कभी घास तथा साइलेज में उपस्थित इस्ट्रोजन के कारण भी नाल या जेर नहीं गिरती है और गर्भाशय शरीर से बाहर निकलती है। कुछ स्थितियों में कारण स्पष्ट नहीं है। इसके प्रबन्ध के लिए पशु को साफ जमीन पर, पीछे के पैर ऊंचे स्तर पर करके खड़ा करें। बाहर की ओर निकले हुए अंग को एक मुलायम साफ कपड़े से पौछें। उसे 1 प्रतिशत सैवलॉन या 0.1 प्रतिशत पोटैशियम परमैगनेट युक्त ठंडे पानी से घोयें। यदि रक्तस्राव हो रहा है तो नियंत्रण के लिए एड्रीनलीन लगाये अथवा स्थानीय सुन्न करने की दवा (एनेस्थैटिक) जैसे जायलोकेन इस्तेमाल करें। बहार निकले हुए अंग को धीरे–धीरे अन्दर डालें। यदि निकले हुए अंग को साफ कपड़े से ढक कर दबाये तो उसका आकार छोटा हो जाता है तथा उसे आसानी से वापस रखा जा सकता है। उसे पूरे हाथ अथवा हथेली से दबायें, उंगुलियों से दबाने के कारण चोट लग सकती है। अंग को ठीक प्रकार शरीर के अंदर करके टांका लगा सकते है। बार–बार होने वाली स्थिति के उपचार के लिए क्लोरल हाईड्रास

50–60 ग्राम, पानी 200 मिली0 तथा लिनि तेल 500 मिली0 मिलाकर प्रयोग करने से लाभ होता है। लार्जेक्टिल 5 प्रतिशत घोल, 10 मिली0 ई0 या सिक्विल 3–5 मिली0 अन्तःपेशीय विधि से देना भी हितकर है। होम्योपैथिक पल्सटिला, पोडोफाइलम तथा सीपिया 200 शक्ति की दस बूंदे हर एक घंटे के अन्तर पर पिलाने से भी लाभ होता है।

उपचार

रोग होने पर पशु का उपचार आवस्यक हो जाता है। हानि–लाभ का अनुमान लगाते हुए उपचार की दवाओं तथा मात्रा को निर्धारित किया जाता है। साधारण रोगों में प्रतिदिन या दिन में दो बार दवा देकर उसका परिणाम आंकलन करते हैं। उपचार में पशु के आर्थिक महत्व पर भी ध्यान दिया जाता है। पशु के उपचार का खर्च यदि पशु की कीमत से ज्यादा या बराबर हो जाये तो भी पशु पालक पशु का उपचार कराने में अरूचि रखते है। अतः उपचार का खर्च पशु की स्थिति को देखते हुए नियन्त्रित करना चाहिए। पशु पालक की आर्थिक स्थिति को भी उपचार के समय दवाओं के चुनाव में ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि कुछ पशुपालक आर्थिक रूप से इतने कमजोर होते है, कि महंगी दवाओं का खर्च निर्वहन नहीं कर सकते है। इसी प्रकार रोग के उपचार एवं रोग के बचाव हेतु अलग प्रकार की दवाओं का चुनाव किया जाता है।

उपचार के प्रकार

रोगी पशु का उपचार भी अनेक प्रकार से किया जाता है। रोग की वास्तविक दवाओं के साथ ही लक्षण के आधार पर, शरीर में उत्पन्न कर्मियों को दूर करने हेतु एवं आहार आदि के आधार पर भी पशु को उपचारित कर सकते है। अतः पशु उपचार के निम्न प्रकार हो सकते हैः

अ. **सामान्य उपचार :** इस प्रकार के उपचार में पशु में रोग के कारण उत्पन्न कमजोरी का टॉनिक देकर, उल्टी–दस्त के कारण उत्पन्न पानी की कमी को पर्याप्त मात्रा में नार्मल सैलाइन चढ़ाकर, चोट आदि के कारण उत्पन्न सूजन की सिंकाई करके या व्यायाम द्वारा तथा पौष्टिक व संतुलित आहार का आवश्यकता अनुसार प्रयोग करके रोग को दूर किया जाता है।

ब. विशेष उपचार : रोग के वास्तविक कारण को ठीक से पता लगाकर तथा रोग से हुए नुकसान का सही अनुमान लगाकर जो उपचार किया जाता है उसे विशेष उपचार कहते है। उदाहरण के लिए यदि पशु को बबेशिया नामक रक्त परजीवी का संक्रमण हुआ है तो सर्वप्रथम उचित मात्रा में बबेशिया नाशक दवा का प्रयोग करना होगा, तत्पश्चात शरीर में हुई रक्तहीनता को दूर करने हेतु रक्तवर्धक तथा अन्य कमजोरी हेतु विटामिन, मिनरल इत्यादि का प्रयोग करना होता है।

स. लक्षण आधारित उपचार : पशु चिकित्सा में कई बार रोग कारक का सही पता नहीं लगाया जा सकता है, ऐसी परिस्थिति में लक्षण के आधार पर ही पशु रोग का उपचार किया जाता है। उदाहरण के लिए पशु को कब्ज की शिकायत है जबकि रोग का इतिहास, आहार का प्रकार एवं गोबर की जांच आदि कोई निश्चित कारण की पहचान करने में सहायता प्रदान नहीं कर रहे है तो पशु को उचित मात्रा में तेल आदि पिलाकर कब्ज ठीक किया जाता है।

द. रोग बचाव हेतु उपचार : यदि आसपास के पशुओं में किसी विशेष रोग के लक्षण प्रदर्शित हो रहे है तो पशुपालक विभिन्न दवाओं के प्रयोग से अपने पशु को उस विशेष रोग से बचाते है। जैसे अन्य पशुओं में यदि थिलेरिया नामक रोग हुआ है तो शेष पशुओं में टेट्रासाइक्लिन नाम औषधि का प्रयोग किया जाता है।